जागरण

Date:18-04-18

विषमता के बहाने विघटन की बात भारत के विनाश का स्वर है

ए. सूर्यप्रकाश (लेखक प्रसार भारती के चेयरमैन एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

पांच दशक बाद दक्षिण भारत से फिर कुछ गैर-जिम्मेदार आवाजें उठ रही हैं। कुछ दक्षिण भारतीय नेता भारतीय संघ के भीतर ही अलग द्रविड़नाडु बनाने की मांग कर रहे हैं जिसमें दक्षिण के पांचों राज्य शामिल हों। वहीं कुछ नेताओं की मांग है कि इन पांचों राज्यों को भारतीय संघ से अलग हो जाना चाहिए, क्योंकि यहां उन्हें उत्तर भारत की तुलना में कम तवज्जो मिलती है। इसकी शुरुआत अभिनेता से नेता बने कमल हासन ने की जब उन्होंने कहा कि अगर सभी दक्षिणी राज्य एक 'द्रविड़ पहचान' के तहत लामबंद हो जाएं तो फिर हमारी आवाज और ज्यादा बुलंद हो जाएगी। द्रमुक नेता एमके स्टालिन ने भी इसमें सुर मिलाते हुए कहा कि उन्हें खुशी होगी अगर सभी दक्षिणी राज्य साथ में आएं और द्रविड़नाडु की मांग करें।

तेलुगु फिल्मों के अभिनेता और जनसेना पार्टी के नेता पवन कल्याण ने भी उत्तर-दक्षिण के बीच बढ़ती खाई को लेकर चेतावनी दी। यहां तक कि उन्होंने तो 'यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ साउदर्न इंडिया' का विचार भी पेश कर दिया। इस पर तेदेपा सांसद मुरली मोहन आजादी की बात करके इस बहस को अस्वीकार्य स्तर पर ले गए। उन्होंने कहा कि दक्षिण भारत खुद को भेदभाव का शिकार महसूस करता है और अगर आगे भी ऐसा रहा तो पांचों दक्षिणी राज्य खुद को 'स्वतंत्र देश' घोषित कर देंगे। भले ही उत्तर-दक्षिण की यह अदावत पुरानी हो, लेकिन मौजूदा असंतोष 15वें वित्त आयोग के उस नजरिये से भड़कता दिख रहा है जिसमें राज्यों के लिए संसाधनों के बंटवारे की व्यवस्था की गई है। निश्चित रूप से केंद्र की ओर से राष्ट्रीय संसाधनों और कोष से अपने लिए उचित वितरण की मांग करने का दक्षिणी राज्यों को पूरा अधिकार है। इन मुद्दों पर चर्चा या बहस हो सकती है, लेकिन ये भारत से अलगाव की वजह नहीं बन सकते।

दक्षिण के लिए अलग पहचान की ये मांगें असल में हैरान करने वाली हैं, क्योंकि पिछले सत्तर वर्षों में एकीकरण की दिशा में राष्ट्र ने काफी प्रगति की है और अलगाव के पक्ष में उठे सुरों को प्रभावी तरीके से शांत भी किया गया है। आजादी के बाद देश ने पहली बार किसी सार्वजनिक मंच पर अलगाव के पक्ष में आवाज तब सुनी थी जब सीएन अन्नादुरई ने 1 मई, 1962 को राज्यसभा में भाषण दिया। द्रमुक नेता अन्नादुरई ने तमिलनाडु (उस समय मद्रास प्रांत) की आजादी को लेकर अपनी पार्टी की विवादित मांग का तुर्रा छेड़ा। उनकी बातों से तमाम सदस्यों को धक्का लगा।

अन्नादुरई ने कहा, 'हमें पुनर्विचार करना होगा। निश्चित रूप से हमारे पास संविधान है, लेकिन अब वक्त आ गया है कि हम पुनर्मूल्यांकन और राष्ट्र शब्द की नए सिरे से व्याख्या करें।' पुनर्मूल्यांकन से अपना आशय स्पष्ट करते हुए अन्नादुरई ने कहा था, 'मैं अलग परिवेश वाले देश से आता हूं जो मेरे ख्याल से तमाम मामलों में अलग है। मैं द्रविड़ तबके से ताल्लुक रखता हैं और मुझे खुद को द्रविड़ कहने में गर्व महसूस होता है। द्रविड़ों में काफी कुछ अलग है जिनसे एक देश बन सकता है। इसलिए हम आत्मनिर्णय चाहते हैं।' उन्होंने कहा कि दक्षिण का बंटवारा हुआ तो उसमें भारत के विभाजन जितनी

मुश्किलें भी नहीं आएंगी, क्योंकि प्रायद्वीप के रूप में यह एक भौगोलिक इकाई है और विस्थापन और शरणार्थियों की समस्या भी पैदा नहीं होगी।

अन्नादुरई ने विभाजन के दौरान कपूरथला में प्रधानमंत्री नेहरू के एक भाषण का हवाला भी दिया। उसमें नेहरू ने कहा था कि कांग्रेस भारत को एक सूत्र में पिरोने की पूरी कोशिश करेगी, लेकिन अगर कोई भारतीय हिस्सा आत्मनिर्णय की मांग करता है तो कांग्रेस उसका समर्थन करेगी। उन्होंने कहा, 'इस तरह जब कांग्रेस

आत्मनिर्णय या स्वतंत्रता के सिद्धांत को स्वीकार करती है तो फिर प्रायद्वीपीय भारत को आजादी क्यों नहीं दी जाती।' अन्नादुरई ने कहा कि भारत को यहां-वहां फैले बेमेल राज्यों का केंद्र बनने के बजाय देशों के सौहार्दपूर्ण समूहों का रूप लेना चाहिए। उन्होंने कहा कि द्रविड़नाडु एक 'छोटा, सुगठित, सजातीय और एकीकृत देश होगा।' दूसरे शब्दों में कहें तो अन्नादुरई ने अलग तमिलनाडु की मांग रखी जिसे और व्यापक रूप देते हुए उन्होंने समूचे दक्षिण को समाहित करते हुए अलग द्रविड़नाडु का खाका पेश कर दिया।

अन्नादुरई की इन मांगों पर भारतीय जनसंघ के नेता अटल बिहारी वाजपेयी ने कड़ा विरोध जताया। अन्नादुरई के भाषण के अगले दिन राज्यसभा में उन्होंने कहा, 'कल हमने इस सदन में खतरे की घंटी सुनी। स्वतंत्रता प्राप्ति और देश के विभाजन के 15 वर्ष बाद फिर से भारत को बांटने की एक आवाज उठी है। विघटन का यह स्वर भारत के विनाश का स्वर है। भारत से अलग होने के और भारत के टुकड़े करने के क्या कारण दिए गए हैं कि मद्रास के साथ न्याय नहीं होता? हम किसी भी राज्य में जाएं तो हमको यह शिकायत मिलेगी। केवल राज्यों में ही नहीं, बल्कि एक राज्य के तो भिन्न-भिन्न हिस्से हैं उनमें भी इस तरह की शिकायत है। इन शिकायतों में कुछ सच्चाई हो सकती है, लेकिन ये शिकायतें हमें इस बात के लिए प्रेरित नहीं कर सकतीं कि हम राष्ट्र के अस्तित्व को चुनौती दें और यह कि हम अपनी स्वतंत्रता की पहली शर्त को समाप्त कर दें और हम यह मांग करें कि भारत टुकड़ों में बंट जाना चाहिए, भारत का वॉलकेनाइजेशन हो जाना चाहिए। मुझे बड़ा खेद है कि यह आवाज आत्मनिर्णय के आवरण को ओढ़ कर आई है। उसे सैद्धांतिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है और पृथकतावादी मांग को एक ऊंचे धरातल पर रखने की कोशिश की गई है और कहा गया है कि भारत एक राष्ट्र नहीं, राष्ट्रों का समूह है और दक्षिण को इस बात की छूट होनी चाहिए कि वह उत्तर से अलग हो जाए। मैं नहीं मानता कि कोई भी देश इस प्रकार की मनोवृत्ति के साथ समझौता कर सकता है। मुस्लिम लीग ने दो राष्ट्रों के सिद्धांत की बात कही थी और हम उसके खिलाफ लड़े। हमने कभी दो राष्ट्र के सिद्धांत को नहीं माना।'

सदन में वाजपेयी के विचारों को तमाम सांसदों का समर्थन मिला जिनमें कई दक्षिण भारत के भी सांसद थे। एक साल बाद चीनी आक्रमण के दौरान जब राष्ट्रीय एकता पहली प्राथमिकता बन गई तब द्रमुक ने अपनी यह मांग वापस ले ली। वह चुनावी तंत्र से जुड़कर मुख्यधारा की पार्टी बन गई और 1967 में उसने राज्य में सरकार भी बनाई। इसके साथ ही लगा कि एकता की हिमायती ताकतों को मजबूती मिली।

राज्यसभा में उस बहस के छप्पन साल बाद हमें फिर से वैसे ही स्वर सुनाई पड़ रहे हैं। इसमें आजादी की बातें भी हो रही हैं जिन पर चर्चा करना भी बेतुका है। भारत की एकता और अखंडता पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता। देश को एक सूत्र में बांधे रखने के लिए बीते सात दशकों में भारतीयों की तीन पीढ़ियां खप गईं। दुनिया में हमारे जितना कोई भी

लोकतांत्रिक और विविधता भरा समाज नहीं नहीं है और कुछ क्षुद्र हितों की पूर्ति के लिए हम विविधता में एकता की इस गौरवमयी यात्रा पर विराम नहीं लगा सकते। वाजपेयी के 1962 के भाषण की बातें आज भी उतनी खरी हैं। हमें भारत की एकता को लेकर उनके आह्वान पर विचार करते हुए अखंडता को चुनौती देने वाली आवाजों को जवाब देना चाहिए।

दैनिक भास्कर

Date:18-04-18

अब राज्यों को अधिक खुला हाथ देने का वक्त

भारतीय संघ को अधिक विकेंद्रीकृत लोकतंत्र की जरूरत ताकि देश की नीतियों में राज्यों की भी भूमिका हो

शशि थरूर (विदेश मामलों की संसदीय समिति के चेयरमैन और पूर्व केंद्रीय मंत्री)

मैंने पिछले लेख में वित्त आयोग के नए संदर्भ बिंदु को लेकर दक्षिण के राज्यों में उठे विवाद की चर्चा की थी। इन राज्यों को लगता है कि शासन, महिला सशक्तीकरण और आबादी रोकने में नाकाम राज्यों को इसमें गलत ढंग से पुरस्कृत किया गया है। मैंने तब इससे बड़े खतरे की ओर ध्यान दिलाया था कि यदि 1971 की आबादी के आधार पर राजनीतिक प्रतिनिधित्व स्थिर रखने की मौजूदा व्यवस्था 2026 में खत्म होने पर यदि यही तर्क गंभीर स्थिति पैदा करेगा। तब दक्षिणी राज्यों को वित्तीय रूप से शिकार बनाए जाने के साथ राजनीतिक प्रतिनिधित्व से भी वंचित होने का अहसास होगा व राष्ट्रीय एकता पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा।

पहले ही कुछ गर्मदिमाग अलगाव पर गंभीर विचार करने की बात कर रहे हैं और चेन्नई के आसपास तो कुछ 'द्रविड नाडु' का मामला फिर जीवित कर रहे हैं। ऐसा कोई विचार चाहे तमिलनाडु के सीमित हलकों को ही लुभाता हो, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इससे जुड़ी चिंता की उपेक्षा की जाए। अपने लेख में मैंने सुझाव दिया था कि दक्षिण की इस फैलती बेचैनी का एक ही इलाज है कि हम अधिक विकेंद्रीकृत लोकतंत्र की जरूरत को पहचानंे। यहां कर संसाधनों की हिस्सेदारी में केंद्रीय हिस्सा इतना महत्वपूर्ण न हो और नई दिल्ली का राजनीतिक अधिकार इतना हावी होने वाला न हो। इससे हाल के आबादीगत आंकड़ों से पैदा हुई चिंताएं उतनी प्रासंगिक नहीं रहेगी।

हम यह कैसे तय करें कि एक विकेंद्रीकृत लोकतंत्र का क्या मतलब है? कर्नाटक के मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने दलील दी है कि भारत एकीकृत राज्य (यूनियन) से संघ-राज्य (फेडरेशन) में विकसित हो रहा है। यह कुछ स्तर तक तो खुशफहमी है। क्योंकि इस दौर में तो 'सहकारी संघवाद' जैसे चिकने-चुपड़े जुमलों के पीछे अधिक-केंद्रीकरण की वास्तविकता छिपा दी गई है, लेकिन कोई कारण नहीं है कि हम भारत को उस दिशा में ले जाने के बारे में न सोचें फिर चाहे हम अभी वहां तक पहुंचे न भी हों।

बेशक हमारी 'अर्ध-संघीय' व्यवस्था में संघीय करंसी सर्वोपरि है। वैसे भी भारत में संघ ने राज्यों का गठन किया है बजाय इसके कि राज्य एकत्रित होकर संघ का निर्माण करते। कुछ नए राज्य तो हाल के वर्षों में संसद में कानून पारित करके गठित किए गए हैं। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि संघ का प्रभुत्व इस हद तक बढ़ा दिया जाए कि जहां राज्यों को न के बराबर या बिल्कुल ही स्वायत्तता न रहे और उन्हें लगे कि वे तो नई दिल्ली के खिलौने बन गए हैं। इसी धारणा ने मौजूदा बेचैनी को जन्म दिया है और वित्त आयोग के संदर्भ बिंदुओं में तकनीकी सुधार को बड़ा मुद्दा बना दिया है।

लेकिन, अधिक संघीय भारत कैसा दिखाई देगा? पहले तो हमें यह आशंका दूर करनी चाहिए कि अधिक संघवाद उस बंधन को ढीला कर देगा, जिसने सारे भारतीय राज्यों को सहभागी राष्ट्रीयता में बांध रखा है। जब कर्नाटक ने अपने आधिकारिक राजकीय ध्वज को मंजूरी दी तो खतरा महसूस किया गया और पुकार उठी कि ऐसा ध्वज तो भारतीय ध्वज को चुनौती है। कई अन्य संघीय राष्ट्रों में प्रदेशों के अपने ध्वज और प्रतीक हैं, लेकिन उनकी राष्ट्रीय सरकारों को खतरा महसूस नहीं हुआ। सच तो यह है कि मजबूत क्षेत्रीय पहचानों को मान्यता देना एक शक्तिशाली व आत्मविश्वास भरे राज्य की पहचान है। केवल कमजोर ही अपने मातहतों को अधिकार संपन्न बनाने के प्रति उदासीन होते हैं।

एकाधिक पहचानों को बढ़ावा देने और उसका उत्सव मनाने की भारत की क्षमता उसकी विशिष्टता रही है। आप एक साथ अच्छे मुस्लिम, अच्छे केरली और अच्छे भारतीय हो सकते हैं और इनमें से हर एक पर गर्व कर सकते हैंं बिना यह महसूस करे कि इनमें कोई दूसरे का महत्व घटाता है। महान मलयाली कवि वल्लथोल ने लिखा है, 'यदि कोई भारत का नाम सुनता है तो उसका दिल गर्व से भर जाना चाहिए, यदि कोई केरल का नाम सुनता है तो उसकी धमनियों में खून को उछाले मारना चाहिए।' इसी तरह कन्नड़ कवि कुवेम्पु ने 'जय भारता जननीय तुनजाथे' की रचना की, जिसमें कर्नाटक को भारतीय राष्ट्र की बेटी बताकर उसकी सराहना की है।

इस तरह दक्षिण के राज्य पृथक होने में रुचि नहीं रखते, वे अधिक ईमानदार संघवाद चाहते हैं। मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने सिर्फ ऐसी व्यवस्था की वकालत की है, जिसमें राज्यों को उनसे इकट्ठा किए गए टैक्स में अधिक बड़ा हिस्सा मिले। इससे तुलनात्मक रूप से विकसित दक्षिणी राज्य अधिक हिस्सा अपने पास रख पाएंगे, जो वे अभी केंद्र को योगदान में देते हैं। इस सुझाव के साथ कठिनाई यह है कि इससे भारत के गरीब राज्यों को सहायता करने के लिए केंद्र सरकार के पास उपलब्ध फंड घट जाएगा। मुख्यमंत्री सिद्धारमैया दलील देते हैं कि 'केंद्रीय योजनाओं का हिस्सा कम होना चाहिए।' यह उक्त सवाल का जवाब हो सकता है। हां, अधिक संपन्न राज्यों से राजस्व लीजिए, ताकि गरीब राज्यों में केंद्रीय योजना के लिए पैसा जुटाया जा सके, लेकिन उन योजनाओं को अधिक लचीलेपन के साथ लागू करें ताकि हर राज्य आकलन कर सके कि क्या उसे इसकी जरूरत है और साथ ही उन्हें अधिकार हो कि वे इन योजनाओं को अपनी जरूरतों के मुताबिक आकार दे सकें। इससे केंद्र की बजाय राज्यों की प्राथमिकताओं के लिए अधिक पैसा मिल सकेगा।

मुख्यमंत्री सिद्धारमैया की यह भी शिकायत है कि देश की आर्थिक नीति तय करने में राज्यों को कुछ कहने का हक नहीं है। वे मुक्त व्यापार समझौते के तहत श्रीलंका के जरिये वियतनाम से सस्ती काली मिर्च के आयात का उदाहरण देते हैं कि समझौते में केरल व कर्नाटक जैसे राज्यों को कुछ कहने का हक नहीं है, जबकि काली मिर्च के उनके किसानों की आजीविका इससे गंभीरता से प्रभावित होगी। वे जीएसटी काउंसिल की तर्ज पर संस्था गठित करने का सुझाव देते हैं, ताकि

'व्यापार नीति और कृषि संबंधी मुद्दों पर नीतियां बनाने में हम बेहतर ढंग से बात रखें, जो हमारे किसानों को प्रभावित करती हैं।..हमें तत्काल ऐसे तंत्र की जरूरत है, जिसमें हमें राष्ट्रीय नीतियों में अपनी बात रखने का मौका मिले।' यह प्रस्ताव विचार करने लायक है। अब दूसरे उदारीकरण का वक्त है। जैसे 1991 के मूल उदारीकरण ने भारतीयों को लाइसेंस राज के बंधनों से मुक्त किया उसी तरह अब हमें राज्यों को उनकी क्षमता के अनुसार और सुशासन से विकसित होने के लिए मुक्त करना होगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:18-04-18

केंद्र से क्यों खफा हैं दक्षिण राज्य

एस श्रीनिवासन

दक्षिणी राज्य 15वें वित्त आयोग की शर्तों को लेकर काफी नाराज हैं। उनका आरोप है कि केंद्र संविधान की संघीय भावना का उल्लंघन कर रहा है। इस मुद्दे पर विचार-विमर्श के लिए पिछले हफ्ते तिरुवनंतपुरम में जुटे आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल व पुडुचेरी के प्रतिनिधियों का लहजा तो काफी तल्ख था। तमिलनाडु, ओडिशा और तेलंगाना के मुख्यमंत्रियों ने भी इस मसले पर केंद्र सरकार को अलग से चिट्ठियां लिखी हैं, जिनमें उन्होंने अपनी चिंता का इजहार किया है। वित्त आयोग की शर्तों से नाराज राज्यों की अगली बैठक विशाखापट्टनम में हो सकती है, जिसमें शामिल होने के लिए पश्चिम बंगाल, पंजाब और दिल्ली के अलावा भाजपा शासित मुख्यमंत्रियों को भी न्योता भेजा गया है। लेकिन टकराव मूलत: केंद्र और दक्षिणी राज्यों के बीच ही है।

सांविधानिक प्रावधानों के तहत हरेक पांच साल पर वित्त आयोग का गठन किया जाता है, ताकि यह तय किया जा सके कि केंद्र व राज्यों के बीच और राज्य-राज्य के बीच राजस्व के बंटवारे की रूपरेखा कैसी होनी चाहिए? दरअसल, राजस्व सामूहिक रूप से इकट्ठा किया जाता है और फिर उसके बंटवारे का एक फॉर्मूला तय होता है। इस संदर्भ में शर्तें तय करते समय वित्त आयोग किसी भी राज्य के राजस्व प्रदर्शन के अलावा कई अन्य मानदंडों पर भी गौर करता है। विवाद इन शर्तों को लेकर ही है। वित्त आयोग अक्सर राज्य की आबादी और उसकी आय के फासले को ध्यान में रखता है। इससे राजस्व बंटवारे की बड़ी शर्त अधिक गरीबी हो जाती है।

दक्षिणी राज्यों की मुख्य आपत्ति वित्त आयोग के इस फैसले को लेकर है कि उसने 2011 की आबादी को अपना आधार बनाया है, जबकि अब तक 1971 की जनसंख्या को ही मानदंड माना जाता रहा है। वैसे 14वें वित्त आयोग ने 2011 की जनसंख्या को 10 फीसदी अतिरिक्त महत्व दिया था, पर इस बार राजस्व बंटवारे में 2011 की आबादी को ही पूर्णत: आधार बनाया जाएगा। दक्षिणी राज्यों ने जनसंख्या नियंत्रण के क्षेत्र में अच्छा काम किया है। जैसे, 1971 से 2011 के बीच दक्षिण में 'स्थानापन्न प्रजनन दर' 2.1 या इससे भी कम रही है। दरअसल, यह दर इस बात से तय होती है कि प्रति महिला कितने बच्चों ने जन्म लिया? इससे यह पता चलता है कि स्थानानांतरण के बगैर एक पीढ़ी की जगह दूसरी पीढ़ी की जनसंख्या में

कितनी बढ़ोतरी हुई? इस लिहाज से उत्तर प्रदेश और बिहार के मुकाबले दक्षिणी राज्यों की जनसंख्या वृद्धि कम रही है। ऐसे में, इन राज्यों को लग रहा है कि आबादी के नियंत्रण में बेहतर प्रदर्शन के लिए उन्हें वित्त आयोग 'दंडित' कर रहा है।

ऐसा आकलन है कि 1971 से 2011 के बीच तमिलनाडु और केरल की आबादी क्रमश: 56 और 75 फीसदी बढ़ी, जो देश के सभी राज्यों में सबसे कम हैं। दूसरी तरफ, बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश की जनसंख्या दोगुनी हो गई। चूंकि लोकसभा में सदस्यों की राज्यवार संख्या का आधार 1971 की आबादी है, इसलिए दक्षिणी राज्य आर्थिक संसाधनों के बंटवारे की बुनियाद भी उसी को बनाने की मांग कर रहे हैं। आलोचकों का यह भी कहना है कि 15वें वित्त आयोग ने अपनी शर्तों में उन विषयों को भी शामिल कर लिया है, जो उसके दायरे में आते ही नहीं। जैसे, शर्तों में यह भी शामिल है कि 'न्यू इंडिया 2022' के लिए चलाई जा रही विभिन्न योजनाओं में राज्यों के प्रदर्शन का भी आयोग मूल्यांकन करेगा। इसे राज्यों पर केंद्र प्रायोजित योजनाएं थोपने के रूप में देखा जा रहा है।

तमिलनाडु ने पूर्व में ऐसी अनेक केंद्रीय योजनाओं का यह कहते हुए विरोध किया था कि वे योजनाएं अब बेमानी हो चुकी हैं या फिर राज्य के सामाजिक-सांस्कृतिक ताने-बाने के अनुकूल नहीं हैं। जैसे, केंद्र की नि:शुल्क चावल वितरण योजना का उसने यह कहते हुए विरोध किया था कि वह इससे कहीं बेहतर योजना पहले से अपने राज्य में चला रहा है। अगला मसला 'लोक-लुभावन' कार्यक्रमों की समीक्षा का है। चूंकि नेताओं द्वारा चुनावों के वक्त मुफ्त में बिजली देने या उपहार बांटने से जुड़े कार्यक्रमों और राज्यों द्वारा कर्ज माफी को लोक-लुभावन माना जाता है, इसलिए वित्त आयोग इनकी भी समीक्षा करना चाहता है। लेकिन राज्य इसका जोरदार विरोध कर रहे हैं। उनकी दलील है कि ऐसी योजनाएं राज्य के आर्थिक विकास और सामाजिक उत्थान में मददगार साबित होती हैं। जैसे, मीड-डे मील योजना और बकरी व गाय बांटने की योजनाओं ने ग्रामीण आबादी के जीवन स्तर में सुधार किया है।

दक्षिणी राज्यों का आरोप है कि आयोग की शर्तों ने वित्तीय अनुशासन के महत्व को घटा दिया है। उनके मुताबिक, इन शर्तों ने राजस्व आवंटन को अधिक जनसंख्या वाले प्रांतों की तरफ झुका दिया है। दक्षिणी राज्य केंद्र के इस दावे को भी खारिज करते हैं कि 14वें वित्त आयोग में अभूतपूर्व कदम उठाते हुए कुल राजस्व का 42 फीसदी हिस्सा राज्यों को हस्तांतरित कर दिया था, जो कि पूर्व के वित्तीय वर्ष के आवंटन में 10 प्रतिशत का इजाफा था। राज्यों का कहना है कि यह 'अधिक धन' आवंटन नहीं था, बल्कि 'अधिक संगठित' कोष का आवंटन था। केंद्र सरकार का कहना है कि उसका खुद का राजस्व दायरा सीमित है और दक्षिणी राज्यों को रक्षा व राष्ट्रीय सुरक्षा के क्षेत्र में बढ़े खर्चे को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। मगर दक्षिण के राज्य इस दलील से संतुष्ट नहीं हैं। उनका सवाल है कि यदि बैंकों के पुनर्पूंजीकरण के लिए केंद्र सरकार ने 80,000 करोड़ रुपये दिए, तो इसमें गलती किसकी है?

बहरहाल, दक्षिणी राज्यों के वित्त मंत्रियों की इस बैठक ने, जिनमें से अनेक एनडीए के बाहर के दल हैं, केंद्र को बेचैन तो किया ही है। इसीलिए प्रधानमंत्री और वित्त मंत्री ने उनकी चिंताओं को 'अनावश्यक' बताया है। प्रधानमंत्री मोदी ने तो पिछले दिनों चेन्नई में एक बैठक में बेहतर जनसंख्या नियंत्रण करने वाले राज्यों को पुरस्कृत करने की बात भी कही। लेकिन दक्षिणी राज्य विभिन्न आकलनों से यह दिखा रहे हैं कि उन्हें राजस्व का नुकसान होने जा रहा है। साफ है, 15वें वित्त आयोग की शर्तों के विरोध की वजह आर्थिक तो है ही, राजनीतिक भी है। राज्य इसे अपने अधिकारों के

अतिक्रमण के रूप में देख रहे हैं। अगले आम चुनाव में अब बस एक साल बचा है। ऐसे में, क्षेत्रीय दल और विरोधी पार्टियां संघवाद का मुद्दा उठाएंगी ही। यह मसला चुनाव में अहम भूमिका निभाएगा।